Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-2(A)| February - 2026

Original Article

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की भारतीय संस्कृति परिप्रेक्ष्य में चिंतन

ऋषिकेश कुमार राम[1], डॉ.मु.असदुल्लाह[2]

[1]शोधार्थी, सामाजिक विज्ञान संकाय राजनीतिक विज्ञान जय प्रकाष विश्वविद्यालय, छपरा

[2]सहायक प्राध्यापक,राजनीतिक विज्ञान विभाग, एच. आर. कॉलेज, अमनौर (सारण) जय प्रकाष विश्वविद्यालय,छपरा।

Email: rishikeshkumar2k@gmail.com

Manuscript ID:
JRD -2026-180205
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 2(A)
Pp. 16-19
February - 2026
Submitted: 15 Jan. 2026
Revised: 25 Jan. 2026
Accepted: 10 Feb. 2026
Published: 28 Feb. 2026

शोध सारांश

संस्कृति किसी भी राष्ट्र के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण और अभिन्न तत्व है जब बात दीनदयाल उपाध्याय और संस्कृति की आती है तो बात उस मूल सनातन संस्कृति की होती है, जिसकी नींव भारतीय राष्ट्र की अस्मिता पर टिकी है। दीनदयाल उपाध्याय उस संस्कृति की बात करते हैं जिसमें जीवन और उसके विकास का संपर्ण पहलू मौजूद है, जिसमें समभाव हो। दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन का आधार समग्र है जिसमें व्यष्टि, समष्टि,सृष्टि और परमेष्टी का समग्र चिंतन है। संस्कृति के बारे में उनके चिंतन का आधार भी समग्र है। दीनदयाल उपाध्याय सनातन संस्कृति के संरक्षक बने। उनके अनुसार भारत ने सम्पूर्ण सृष्टि रचना में एकत्व देख है एवं भारतीय संस्कृति सनातन काल से एक एकात्मवादी है और सृष्टि के एक–एक कण में परम्परावलम्बन है। एकात्मा मानववाद सिद्धांत के प्रतिपादन व अपने आचरण से उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। यह शोध पत्र भारतीय संस्कृति की अनूठी विषेषता, दीनदयाल उपाध्याय के अनुभव एवं विचारों पर आधारित है। किसी भी शोध कार्य की गुणवत्ता के लिए शोध पद्धति का विषेष है अतः व्याख्यात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन का उद्देष्य भारतीय संस्कृति की मौलिकता और विषालता को उजागर करना है।

मुख्य शब्द :– *भारतीय संस्कृति, राष्ट्र सनातन संस्कृति, एकात्म मानववाद, व्यष्टि से परमेष्टी*

भूमिका

पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्वतंत्रता के पष्चात राजनीतिक दल के नेता संगठनकर्ता थे। उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक रहे व भारतीय जनसंघ की संगठनात्मक संरचना की मजबूत नींव रखी। अतः उनके लिए अपरिहार्य था कि देष के सम्मुख उपस्तिक होने वाली दैनिक समस्याओं, सरकारी नीति नीतियों, चुनावों आंदोलनों, विपदाओं तथा दल प्रचार आदि बातों की ओर ध्यान देते है। दीनदयाल ने भारतीय संस्कृति के संस्कारों तथा जीवनदृष्टि को अपने जीवन में आत्मसात करते हुए राष्ट्र जीवन की स्वाभाविक धारा का दर्षन कराया। दीनदयाल का मानव जीवन की समग्रता का आकलन उनकी चिंतन धारा को परिपूर्ण करता है। मनुष्य की सभी प्रेरणा (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) मानव जीवन की परिपूर्णता के मूल आधार (षरीर, मन, बुद्धि आत्मा) और पिंड से लेकर ब्रह्मांड तक (व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेष्टि), सभी के परस्पर सम्बन्धों दीनदयाल के भारतीय के भारतीय संस्कृति के विचारों में निरूपित होती है। भारतीय संस्कृति केवल संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में ही नहीं, लोक भाषाओं में भी व्यक्त है, दीनदयाल ने इसका समन्वय किया।

दीनदयाल जी की दृष्टि में 'मानवीय चेतना' एवं कर्म का कोई भी आयाम संस्कृति के बाहर नहीं है। राष्ट्र की राजनीतिक हमेषा समाज की संस्कृति होगी वैसी ही राजनीतिक भी होगी। पंडित जी की सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पीछे की समाजषास्त्रीय अवधारण भी यही है। वे खुद कहते थे कि मैं राजनीति में संस्कृति का राजदूत हूं। संस्कृति ही किसी राष्ट्रीय समाज की पहचान का आधार होती है। संस्कृति शब्द भारत मौलिक शब्द है, जिसे समझने के लिए सर्वप्रथम 'संस्कार' शब्द को समझना जरूरी है। संस्कार वे अच्छाइयों हैं, जो व्यक्ति अपने सामाजिक परिवेष व वातावरण के प्रभाव से ग्रहण करता है। यही अच्छाइयां फिर व्यक्ति के स्वभाव का अंग बन जाती है। इस तरह स्वभाव जनित अच्छाइयों से उत्पत्र सामाजिक कृतियों ही 'संस्कृति' है। यानी संस्कारों द्वारा निर्मित वस्तु ही संस्कृति है।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
ऋषिकेश कुमार राम, शोधार्थी, सामाजिक विज्ञान संकाय राजनीतिक विज्ञान जय प्रकाष विश्वविद्यालय, छपरा

How to cite this article:
राम, . ऋषिकेश . कुमार ., & मु.असदुल्लाह. (2026). पंडित दीनदयाल उपाध्याय की भारतीय संस्कृति परिप्रेक्ष्य में चिंतन. Journal of Research & Development, 18(2(A)), 16–19.https://doi.org/10.5281/zenodo.18932936

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.18932936
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-2(A)| February - 2026

संस्कृति

वही संस्कृति श्रेष्ठ है, जहाँ मानवीय, भौतिकत त्वों से सर्वोच्च है, वही संस्कृति श्रेष्ठ है जहाँ सभी संस्कृतियों को सम्मान होता हो, भारतीय संस्कृति का मूल आधार सहिष्णुता है। जीवन की अनेकता व विविधता को स्वीकारतेह ुए भारतीय संस्कृति, सांस्कृतिक एकता का परिचायक है। अनेक विदेषी आक्रांताओं और उनके जीवन विविधताओं को अपने में समाहित करते हुए, अपनी मूल संस्कृति को जीवित रखने का साहस भारतीय संस्कृति में हीह ै। यही विषेषता भारतीय संस्कृति को वैष्वि संस्कृति से अलग करती है। संस्कृति किसी राष्ट्र के जीवन का प्रमुख तत्व होता है। भारतीय जीवन पद्धति में संस्कृति का स्थान सर्वोच्च है या कोई कहें कि भारतीय संस्कृतिक राष्ट्र जीवन का आत्मा है, जो राष्ट्र को जीवन देती है। भारतीय संस्कृति गतिषील रहती है। परन्तु अपनी विषेषताएं संजोए रखती है। राष्ट्र में राष्ट्र भक्ति की भावना का निर्माण करने और उसको साकार रूप देने का श्रेय संस्कृति को ही जाता है।

"राष्ट्र की सांस्कृतिक स्वतंत्रता अत्यंत महत्व की है क्योंकि संस्कृतिक ही राष्ट्र के संपूर्ण शरीर में प्राणों के समान संचार करती है। प्रकृति के तत्वों पर विजय पाने के प्रयत्न में तथा मानवनुभूति की कल्पना में मानव जिस दृष्टि की रचना करता है, वह उसकी संस्कृति है। संस्कृति कभी गतिहीन नहीं होती अपितु वह निरंतर गतिषील है फिर भी उसका अपना एक अस्तित्व है। नदी के प्रवाह की भाँति निरंतर गतिषील होते हुए भी वह अपनी निजी विषेषताएँ रखती है,जो उस सांस्कृतिक दृष्टिकोण को उत्पत्र करने वाले समाज के संस्कारों में तथा उस सांसकृतिक भावना से अन्य राष्ट्र के साहित्य, कला, दर्षन स्मृति शास्त्र, समाज रचना, इतिहास एवं सभ्यता के विभित्र अंगों में व्यक्त होती है। परतंत्रता के काल में इन सब पर प्रभाव पड़ जाता है तथा स्वाभाविक प्रवाह अवरूद्ध हो जाता है। आज स्वतंत्र होने पर आवष्यक है कि हमारे प्रवाह की संपूर्ण बाधाएँ दूर हो तथा हम अपनी प्रतिभा के अनुरूप क्षेत्रों का विकास कर सकें। राष्ट्र भक्ति की भावना का निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय भी राष्ट्र की संस्कृति को ही है, तथा वही राष्ट्र की संकुचित समीओं को तोड़कर मानव का एकात्मकता का अनुभव कराती है। अतः संस्कृति की स्वतंत्रता परमावष्यक है, बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही नहीं टिकाऊ भी नहीं रह सकेगी।

राष्ट्र

"राष्ट्र एक जीव–मान इकाई है। वर्षो–षताब्दियों लंबे कालखंड में इसका विकास होता है। किसी निष्ति भू–भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब अपने जीवन के विषिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ समान परंपरा और महत्वाकांक्षाओं से युक्त होता है, सुख दुःख की समान स्मृतियाँ की समान स्मतियाँ और शत्रु –मित्र की समान अनुभूतियाँ प्राप्त कर परस्पर हित संबंधी में ग्रसिक होता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन–मूल्यों की स्थापना के लिए सचेष्ट होता है, और इस परंपरा का निर्वाह करने वाले तथा उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान् तप, त्याग, परिश्रम करने वाले महापुरूषों की श्रृंखला निर्माझा होती है, तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भित्र एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावात्मक स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता है।

राष्ट्र सामूहिकता की सबसे बड़ी इकाई है। एक राष्ट्र को भी इन चार घटकों की आवष्यकता होनी चाहिए। एक राष्ट्र के अस्तित्व के लिए, एक देष होना चाहिए जिसमें एक भू–भाग और उसमें रहने वाले लोग शामिल हो, भू–भाग अपने आप में एक देष नहीं बनाता है। जिस भू–भाग को उस पर रहने वाले लोग ही मां के रूप में पुजते है, उसे ही देष का दर्जा दिया जा कसता है। दक्षिणी ध्रुव, जहाँ कोई नहीं रहता, उसे देष नहीं कहा जा सकता। लेकिन भारत एक देष है क्योंकि हम, इसके लोग इसे माँ मानते हैं। दूसरी पूर्व शर्त है साथ रहने की इच्छा और उस इच्छा को साकार करने का संकल्प तीसरा है एक व्यवस्था, नियम और एक संविधान, जिसे हम उचित रूप कहते हैं। और चौथा है जीवन के आदर्ष और मूल्य। इन तत्वों के योग से राष्ट्र का निर्माण होता है। जिस प्रकार शरीर, हृदय, मन और आत्मा से एक व्यक्ति का निर्माण होता है, उसी प्रकार राष्ट्र का आधार समग्र राष्ट्र, साथ रहने की इच्छा, धर्म और जीवन आदर्ष होते है।

भारतीय संस्कृति की विषेषता

सामान्यतः अपने विभित्र लेखों व भाषणों में दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति को विभित्र प्रकार से वर्णित किया है। लेकिन वे भारत की कमजोरियों के प्रति भी सचेत थे। "एकांगिता, कालबाह्यता तथा निहित स्वार्थता के अनेक रोग भारत रोग भारत को अंदर से खोखला कर रहे है। हमने अपनी प्राचीन संस्कृति का विचार किया है, लेकिन हम कोई पुरातत्त्ववेत्ता नहीं है। हम किसी पुरातत्व संग्रहालय के संरक्षक बनकर नहीं बैठना चाहते। हमारा ध्वेय संस्कृति का संरक्षण नहीं, अपितु उसे गति देकर सजीव व सक्षम बनाना है। हमें अनेक रूढ़ियाँ समाप्त करनी होंगी, बहुत से सुधार करने होगें। आज यदि समाज में छुआछूत और भेद भाव घर कए गए हैं, जिनके कारण लोग मानव को मानव समझकर नहीं चलते जो राष्ट्र की एकता के लिए घातक सिद्ध हो रहे है, हम उनको समाप्त करेंगे। भारतीय संस्कृति के प्रति दीनदयाल के दृष्टिकोण को हम निम्र प्रकार से बिंदुबद्ध करने का प्रयत्त्र कर सकते है।

भारतीय संस्कृति 'संस्कारवादी' "संसार में एकता का दर्षन कर, उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचानकर उनमें परंपरानुकुलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही संस्कृति है। प्रकृति को ध्वेय की सिद्धि के अनुकुल बनाना संस्कृति और उसके प्रतिकूल बनाना विकृति है। संस्कृति प्रकृति को अवहेलना नहीं करती, उसकी ओर दुर्लक्ष्य नहीं करती, बल्कि प्रकृति मे जो भाव–सृष्टि की धारणा तथा उसको अधिक सुखकर और हितकर बनाने वाले है, उसको बढ़ावा देकर दूसरी प्रवृत्तियों की बाधा को रोकना ही संस्कृति है।

अतः भारतीय संस्कृति 'संस्कारवादी' है। संस्कारित समाज स्वायत्त समाज होता हैं औपचारिक व्यवस्थाओं का बंधन व्यक्ति को कुंठित करने वाला होता है। संस्कारों का नियंत्रण स्वयं स्वीकृत होता है जबकि कानून आरोपित भारत की राज्य विहीनता का आधार उसकी संस्कार दृष्टि है। इसके साथ ही भारतीय संस्कृति 'समन्वयवादी' भी है। व्यक्ति व समाज में समन्वय,

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-2(A)| February - 2026

भौतिकता व अध्यत्मिकता में समन्वय, राष्ट्र एवं विष्व में समन्वय, विभिन्न विचारों व पंथों में समन्वय तथा हर प्रकार के संघर्ष को शामिल करने की अद्‌भुत समन्वय क्षमता भारतीय संस्कृतिक का विषिष्ट लक्षण है।

भारतीय संस्कृति एकात्मवादी "भारतीय संस्कृति संपूर्ण जीवन का, संपूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। उसका दृष्टिकोण एकात्मवादी है। टुकड़े–टुकड़े में विचार करना विषेषज्ञ की दृष्टि से ठीक हो सकता है, लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से नहीं पष्चिम की समस्या का मुख्य कारण उनका जीवन के संबंध टुकड़े–टुकड़े मे विचार और फिर उन सबको जोड़ने का प्रयत्न है। हम तो स्वीकार करते है कि जीवन मे अनेकता अर्थात् विविधता है, किन्तु उसके मूल्य मे निहित एकता को खोज निकालने का हमने सदैव प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न पूर्णतः वैज्ञानिक है। डार्विन ने मत्स्य न्याय को जीवन का आधार माना किंतु हमने संपूर्ण जीवन में मूलभूत एकता का दर्षन किया। जो द्वैतवादी रहे उन्होंने भी प्रकृति और पुरूषों को एक–दुसरे को विरोधी अथवा परस्पर संघर्षषील न मानकर पूरक ही माना है। जीवन विविधता अंतर्भूत एकता का आविष्कार है और इसलिए उनमें परम्परानुकूलता तथा परस्पर पूरकता है। बीज की एकता ही पेड़ के मूल, तना, शाखाएँ, पत्ते, फूल और फल के विविध रूपों में प्रकट होती है। इन सबके रंग, रूप तथा कुछ–नकुछ मात्रा में गुण में अंतर होता है। फिर भी उनके बीज के साथ के एकत्व के संबंध को हम सहज ही पहचान सकते है।

बम्बई के अपने ऐतिहासिक भाषण में जब दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की व्यवस्था प्रस्तुत की, जब बहुत भावपूर्ण शब्दों में उन्होंने अपने व्याख्यान का समापन किया। विष्व का ज्ञान और आज तक की अपनी सम्पूर्ण परम्परा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से भी अधिक गौरवषाली होगा, जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ, सम्पूर्ण मानवता ही नहीं, अपितु सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार कर नर से नारायण बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्रत दैवी और प्रवहमान रूप है। चैराहे पर खड़े विष्व मानव के लिए यही हमारा दिग्दर्षन हैं। भगवान हमें शक्ति दें कि हम इस कार्य में सफल हो, यही प्रार्थना हैं।

दीनदयाल उपाध्याय ने संस्कृतिक की व्याख्या हुए चिति शब्द का प्रयोग किया है। यह सामाजिक व राष्ट्रीय चित को अभिव्यक्त करने वाला तकनीकी शब्द है। चिति की परिभाषा करते हुए दीनदयाल उपाध्याय अपने एक लेख में लिखते है। "राष्ट्र के प्रति भक्ति तथा अपने राष्ट्र के जनसमूह के प्रति सहानुभूति की भावना का मूल कारण न तो हमारी यह स्वार्थ की एकता है और न ही समान शत्रुत्व या मित्रत्व। हमारी देषभक्ति तो राष्ट्र के संपूर्ण जन–समाज के प्रति ममत्व की भावना के कारण है जो कि एकात्मत्व का परिणाम है। व्यक्ति की आत्मा के समा नही राष्ट्र की भी आत्मा होती है। राष्ट्र की इस आत्मा को हमारे शास्त्रकारों ने 'चिति' कहा है।

संपूर्ण दीनदयाल एवं संघ साहित्य में स्व स्वत्व भारतीयत्व राष्ट्रीय आत्म आदि शब्दों का बहुतायत से प्रयोग होता है। मनुष्य की आत्मा के समा नही चिति भी अगोचर है। दीनदयाल उपाध्याय मानते हैं कि किसी देषविषेष पर रहने के कारण समाज में ही स्वाभाविक रूप से विकसित होकर इसकी अभिव्यक्ति साहित्य, संस्कृति व धर्म में होती है। इसी से सामाजिक परंपराओं एवं ऐतिहासिक एकता का भी निर्माण होता है। इसलिए केवल विदेषी सत्ता के विरोध मात्र के कार्य को दीनदयाल उपाध्याय देषभक्ति का अथवा राष्ट्रीय कार्य मानने को तैयार नहीं है। चिति के इस प्रकाष के उज्ज्वलतर बनाने का कार्य ही देषभक्ति का मुख्य आधार होता है। राष्ट्र को इस आत्मसाक्षात्कार में मार्ग पर ले चलने वाला ही देषभक्त होता है, केवल विदेषियों का विरोध करने वाला नहीं।

भारतीय संस्कृतिपरक समाधान को दीनदयाल उपाध्याय ने अपने विचारदर्षन में जिन अंतर्निहित अभिधारण के आधार पर विकसित किया है उनके पारिभाषिक अर्थें में समझना है। जगत की संपूर्णता की दृष्टि से उपाध्याय चार अभिधानों का उल्लेख करते है व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि तथा परमेष्टि।

व्यष्टि

आत्मवादी लोगों में ईष्वरवादी व निरीश्रवरवादी दोनों ही आते है। प्राचीन ग्रीस, चीन व भारत मे आत्मवादी विचारकों को बाहुल्य था। व्यक्ति आत्मवान् होने के कारण स्वयं समर्थ भी है तथा 'आत्म' परमात्मा का अंष होने के कारण 'परमसत्ता' के अंतर्गत भी है। शरीर के अधिष्ठान के बिना आत्मा 'अव्यक्त' रहती है तथा आत्माविहीन शरीर भी अव्यक्त ही रहता है। अतः आत्मा व शरीर के मेल से ही 'व्यष्टि' अपने को 'व्यक्त' करती है। इसलिए 'व्यक्ति' संज्ञा का सृजन हुआ। मनुष्य आत्मा का व्यक्त रूप है। आत्मवादी सामान्यतः नैतिकतावादी एवं अराज्यवादी होते है। दीनदयाल के अनुसार शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा के समुच्चय का नाम व्यष्टि है।

अधिभौतिक शरीर तथा आध्यात्मिक चेतना (आत्मा) 'मन' तथा 'बुद्धि' को प्रकाषित करते हैं। इन चारों को संतुलन को हीवे 'मानव' का व्यक्तिकरण मानते हैं। यह 'व्यष्टि है। उपाध्याय के अनुसार व्यक्ति न तो पृथक् रूप से पूर्ण सत्ता है तथा न ही अपूर्ण वरन् वह समष्टि तथा सृष्टि के साथ 'एकात्मा' सत्ता है। सृष्टि, समष्टि एवं व्यष्टि एक 'अविभक्त' इकाई है। उनके अनुसार व्यक्ति समाज का दृष्यमान प्रतिनधि होता हैं व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। उनके व्यक्ति विचार का केंद्र का केंद्रबिंदु यह है कि जब हम व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास का विचार करे तो यह चतुरायामी होना चाइये, एकांगी नहीं तथा वह समाज से पृथक नहीं वरन् एकात्मा होना चाहिए।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति विष्व की एक ऐसी संस्कृति जिसमें संपूर्णता समाहित है। जीवन व सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार किया गया हैं हम अपनी संस्कृति को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे अनुभव कर सकते है। हमारी संस्कृति मूलतः सामाजिक हैं इसमें व्यक्ति व समष्टि का संस्कृति के साथ गहरा संबंध है, जिसके लिए किसी प्रमाण की आवष्यकता नहीं है। यहाँ संस्कृति में ही समाज की आत्मा का प्रकटीकरण होता हैं हमारी भारतीय संस्कृति को सबसे बड़ी विषेषता यह है कि यह एकात्मानवादी है। और इसमें जीवन का समग्र व संकलित विचार किया जाता है। भारतीय संस्कृति हजारों वर्षों की संस्कृति है, परन्तु रूढ़िवादी नहीं है, बस

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-2(A)| February - 2026

हमे मात्र अपनी संस्कृति पर आने वाली चुनौतियों से सचेत रहना है कि, कैसे भावी भारत में, अपनी मूल संस्कृति विध्यमान रहे। अपनी संस्कृत की मौलिकता बनी रहे, इसकी मानवीय गुणों का अनुकरण होता रहे, और भारतीय संस्कृति सदैव वैष्विक संस्कृति को नेतृत्व देती रहे, ऐसा विचार हमें करते रहना है।

संदर्भ सूची

1. अग्निहोत्री, सं. रामषंकर एवं शुल्क, भनुप्रताप :– "राष्ट्र जीवन की दिषा दीनदयाल उपाध्याय" लोकहित प्रकाषन, लखनऊ, 2008 पृ. 33–34
2. अग्निहोत्री, सं. रामषंकर एवं शुल्क, भनुप्रताप :– "राष्ट्र जीवन की दिषा दीनदयाल उपाध्याय" लोकहित प्रकाषन, लखनऊ, 2008 पृ. 36
3. डॉ. बर्थवाल, हरिचंद्र :– "पंडित दीनदयाल उपाध्यायः व्यक्तित्व एवं जीवनदर्षन" दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ.72
4. एकात्मा दर्षन, अध्याय :– "राष्ट्रजीवन के अनुकुल अर्थ रचना" दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 72
5. डॉ. केसरी, अर्जुनदास :– "भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षधरः पं. दीनदयाल उपध्याय" पत्रिका उत्तर प्रदेष संदेष, प्रकाषन सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उत्तर प्रदेष, सितंबर 1991 पृ. 82
6. एकात्मा दर्षन, अध्याय :– "राष्ट्रवाद कीसही कल्पना" दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 10
7. उपाध्याय, दीनदयाल :– "राष्ट्रधर्म" अंक 3–4, कार्तिक पूर्णिमा 2004, पृ. 125
8. उपाध्याय, दीनदयाल :– "राष्ट्रधर्म" अंक 3–4, कार्तिक पूर्णिमा, 2004 पृ. 126
9. उपाध्याय, दीनदयाल :– दिनांक 10–08–1961 का बौद्धिक वर्ग, पृ. 112
10. एकात्मा दर्षन, अध्याय :–"राष्ट्रजीवन के अनुकुल अर्थ रचना" दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 73